अष्टादशस्मृति

(भाषा टीका सहित)

मूल लेखक

पं० मिहिरचन्द

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः
राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए' - श्रेण्या प्रत्यायितः मानितविश्वविद्यालयः)
नवदेहली

पुस्तकमिदं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य पुनर्मुद्रणयोजनायां प्रकाशितम्।

अष्टादशस्मृति

(भाषा टीका सहित)

मूल लेखक

पं० मिहिरचन्द्र

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

(भारतशासनमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयाधीनः

राष्ट्रियमूल्याङ्कन-प्रत्यायनपरिषदा 'ए'-श्रेण्या प्रत्यायितः मानितविश्वविद्यालयः)

नवदेहली

प्रस्तावना

संसार की परम्पराओं में से प्रकाश और अन्धकार, विकास और संकोच की दो अनादिधारायें निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं। संसार को सागर कहा जाय तो ज्वार और भाटारूपी लीला स्वतः इस लीला के कार्य और कारण बन रही है। समुद्र के अतिरिक्त जैसे ज्वार-भाटा कोई वस्तु नहीं है नाम ज्वार-भाटा है; उथल-पुथल इनका स्वरूप भी है, परन्तु वस्तुतः समुद्र ही ज्वारभाटा है; बनने और बिगड़नेवाला संसार वास्तव में कोई सत्य वस्तु नहीं है उसकी, आधाररूपी आत्मतत्त्व मे प्रतीति मात्र है। अतः इसके बिगड़ने और बनने में धीर व्यक्ति अधीर नहीं होते हैं। "धीरस्तत्र न मुह्यति"।

संसार की प्रतीति दिन-रात से होती है। दिन-रात का कारण एकमात्र प्रकाशवान् सूर्य है, सूर्य का प्रकाश ही चुम्बकीय आकर्षण है, यही जड़-चैतन्य संसार का प्रधान तत्त्व है। इस संसार में आदि-काल से दो प्रकार की शक्ति-विद्या-अविद्या, ज्ञान-अज्ञान, दैवी-आसुरी का क्रम चल रहा है। सृष्टि क्या है? इसकी रचना-शक्ति की वास्तविकता पर न केवल भारतवर्ष में अपितु विश्व में अनेक दार्शनिक गवेषणायें सम्प्रदायानुसार चली आ रही हैं। जहाँ तक इन्द्रियों की प्रत्यक्षता में सृष्टि का कार्य है वहां तक विज्ञान और उसके आगे दार्शनिक विचार धारायें बड़े वेग से प्रवाहित हो रही हैं।

दर्शन और विज्ञान के परिशीलन करने से ज्ञात हुआ है कि आधिभौतिक संसार भोग प्रधान है, इसको ही आसुरी सर्ग भी कहा है। दूसरी सृष्टि ज्ञान प्रधान है, इसे दैवी संसार कहा है। आसुरी संसार के भौतिक दार्शनिक विचार और पुरुषार्थ, भौतिक आमोद-प्रमोद एवं भौतिक देह के भोगों तक ही सीमित हैं। इसका उदाहरण संसार की व्यावहारिक क्षमता, नैतिक, पुरुषार्थ और दक्षता से स्पष्ट है।

निरुक्त के निघण्टु द्वारा वेदादि शास्त्रों के गम्भीर अभिप्राय के जानने में सहायता मिलेगी ऐसी मान्यता है। वेदादि शास्त्रों की कुञ्जी निरुक्त के अभाव से बन्द तालों में छिपी-सी पड़ी है।

वेद ब्रह्माण्ड के समष्टिगत तत्त्व को हमें आदिष्ट करते हैं; धर्म शास्त्र व्यवहार और परमार्थ का हमें समवेत ज्ञान कराते हैं। आज सही चाभी से ही इस अक्षयभण्डार को खोलकर हमारे शुभ-मङ्गल की कामना करने वाले महर्षियों के हार्द को समझना हमारा कर्तव्य है इसी में सब का कल्याण है। यहां यह ध्यान में रखना चाहिये कि इनमें निबद्ध ज्ञानराशि "सर्वभूतहिते रताः" ऋषियों की साधना है उन्हें उनके व्यापक रूप में देख अपने पढ़ने एवं कर्तव्य-पालन से पूर्ण सहायता मिल सकती है।

इस आशा पर सुलभ्य और दुर्लभ्य १८ स्मृतियों का संग्रह कर भाषा टीका के साथ प्रकाशित किया गया है जिससे अपनी प्रधान भाषा के द्वारा इस संदर्भ का रहस्य प्रत्येक आसानी से प्रकट हो जायें।

—●—

विषय—सूची

१. अत्रि संहिता १-६१
धर्मशास्त्रोपदेश, शुद्धि प्रकरण, प्रायश्चित, दान-फल, श्राद्ध-फल, निन्द्य ब्राह्मण, धर्म फल।

२. विष्णु प्रोक्त धर्म ६२-६९
विष्णु भगवान् द्वारा निर्धारितधर्मशास्त्र।

३. हारीत-स्मृति ८०-११३
वर्णाश्रम धर्म, चतुर्वर्ण धर्म ब्रह्मचर्याश्रम धर्म, गृहस्थाश्रम धर्म, वानप्रस्थाश्रम धर्म, सन्यास आश्रमधर्म, योग।

४. औशनस-स्मृति ११४-१२३
ब्रह्मचारी धर्म, श्राद्ध-अशौच, प्रेतकर्म, प्रायश्चित।

५. आङ्गिरस-स्मृति १२४-१३६
प्रायश्चित का विधानपानी पीना, अच्छिष्ट भोजन, वस्त्र-धारण भोजन, दान, प्रायश्चित।

६. संवर्त-स्मृति १३७-१७१
ब्रह्मचर्य वर्णन, धर्म वर्णन, कन्या-विवाह वर्णन, अशौच-वर्णन, पाप-प्रायश्चित, गोदान-माहात्म्य, दिनचर्या वर्णन, वानप्रस्थ, यति-धर्म, पाप-प्रायश्चित, सुरापान, जीवहत्या, अगम्यागमन, अभक्ष्य-भक्ष्य, प्रायश्चित, उपवास-व्रत, ब्राह्मण-भोजन, गायत्री, प्राणायामादि।

७. लघु यम स्मृति १७२-१८७
नाना विध प्रायश्चित वर्णन, यज्ञ, तालाब, कूप आदि निर्माण-विधान।

८. आपस्तम्ब स्मृति १८८-२२०
गोरोधनादि विषय, गोहत्या, शुद्धि, अशुद्धि, वस्त्र-धारण, रजस्वला, विवाह, कन्या रजोदर्शन, सुरादि सेवन, दूषित अन्न-भोजन, मोक्षाधिकारणाभिधान आदि।

॥ तृतीयः खण्डः ॥

अथ त्रिविधक्रियावर्णनम् ।

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ।
अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥१॥

कर्म करने वालों की अक्रिया (निन्दित क्रिया) को विद्वानों के द्वारा तीन प्रकार की बताया गया है। १—अक्रिया (कर्म को न करना)। २—परोक्ता (दूसरी शाखा के लिये कहे हुए कर्म को करना)। और ३—अयथाक्रिया (कर्म जैसे करना चाहिए था; वैसे न करना)।

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयञ्च यः ।
कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥२॥

अपनी शाखा से सम्बन्धित कर्म को छोड़कर जो दुष्टबुद्धि दूसरों की शाखा से सम्बन्धित कर्म को करना चाहता है, वह उसका चेष्टित निष्फल है।

यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ।
विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकर्मवत् ॥३॥

जिसका अपनी शाखा में उल्लेख नहीं है, जिसका दूसरों ने अपनी शाखा में उल्लेख किया है, परन्तु अपनी शाखा के विरोध में नहीं है, विद्वानों को उसका अनुष्ठान अग्निहोत्र आदि कर्मों के समान करना चाहिये।

प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात् कथञ्चन ।
यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥४॥

यदि मनुष्य किसी प्रकार से अज्ञान के कारण प्रारम्भ किए हुए कार्य को जैसा करना चाहिये था उससे उलट कर दे, तो जहां से वह उल्टा हुआ है उसे वहीं से आरम्भ करके पूरा कर दे।

समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् ।
तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥५॥

कर्म समाप्त (पूरा) होने पर यदि उसे पता चले कि मेरे द्वारा यह उलट कर दिया गया है, तो जितना कर्म अन्यथा हो गया है उतना ही फिर से कर दे. सम्पूर्ण कर्म की आवृत्ति उचित नहीं है।

प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः ।
तदङ्गस्याक्रियायाञ्च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥६॥

वह अन्यथा कर्म, जिसमें प्रधान कर्म अभी नहीं किया गया, उसे साङ्ग पुनः करना चाहिये। वह अन्यथा कर्म जिसमें अङ्ग-मात्र करने को शेष है, उसकी आवृत्ति नहीं करनी चाहिये और न वह अङ्ग-मात्र शेष कर्म करना चाहिये।

मधु मध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम् ।
गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः ॥७॥

भोजन खाना चाहने वालों का इस विषय में मधु, मधु, मधु इस प्रकार का तीन बार करणीय जो जप है, वह इस (श्राद्ध) विषय में 'मधु वाता ऋतायते' (ऋ० १.९०.६) आदि मन्त्र को छोड़कर गायत्री के तुरन्त बाद करना चाहिये।

न चाश्नत्सु जपेदत्र कदाचित् पितृसंहिताम् ।
अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ॥८॥

इस (श्राद्ध-कर्म) में ब्राह्मणों के भोजन खाते हुए पितृ-संहिता का कभी जप न करे। अन्य ही सोम, साम आदि शुभ जप करना चाहिये।

यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद् यववत्तथा ।
उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥९॥

इस (श्राद्ध) में तिल जैसा तथा जौ जैसा जो अन्न का पिण्ड (प्रकर पिण्ड) है, वह यहां उच्छिष्ट के समीप दिया जाना चाहिये। (ब्राह्मणों के) तृप्त हो जाने पर विपरीत स्थान पर (जहां उच्छिष्ट न हो) देना चाहिये।

सम्पन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते ।
सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥१०॥

'क्या आप तृप्त हुए ?' इस प्रश्न के स्थान पर 'क्या (भोजन) रुचिकर है ?' यह बात यजमान को पूछनी होती है। 'बहुत रुचिकर है' (ब्राह्मणों के) ऐसा कहने पर शेष अन्न भी उन को दे दे।

प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत् ।
अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति पात्रतः ॥११॥

तत्पश्चात् पूर्व की ओर अग्रभाग वाली कुशाओं पर आद्य (पिता) को पूर्व (पिता) की तरह आमन्त्रित करके अवनेनिक्ष्व (भली प्रकार पवित्र करो) (कर्मप्रदीप १.३.११) यह मन्त्र पढ़ कर पात्र से जलों को उन (कुशाओं) के मूल देश पर डाले।

अपने मृत सम्बन्धी के लिये कुल-परम्परा के अनुसार, बारह मासिक श्राद्ध करने के पश्चात् जब तेरहवें श्राद्ध की उपस्थिति हो जाती है और सपिण्डीकरण श्राद्ध भी करणीय होता है, शूद्र-कन्या से उत्पन्न पुत्र उस श्राद्ध को करने का अधिकारी नहीं है। इस लिये सब प्रकार के प्रयत्न द्वारा शूद्र कन्या को भार्या बनाने का परित्याग करना चाहिये।

पाणिग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीयात् क्षत्रिया शरम्।
वैश्या प्रतोदमादद्याद्वैदले त्वग्रजन्मनः ॥१३॥

सवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) कन्याओं के विवाहों में उनका हाथ ग्रहण (पाणिग्रहण) किया जाता है। और कन्याएं क्रमशः ब्राह्मण कन्या दो भिक्षापात्र, क्षत्रिय कन्या बाण और वैश्य कन्या पशु हांकने का डंडा (प्रतोद) ग्रहण करती है।

सा भार्य्या या वहेदग्निं सा भार्य्या या पतिव्रता।
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या प्रजावती ॥१४॥

पत्नी वह है जो अपने पति के साथ यज्ञ में भागीदार हो, पत्नी वह है जो पति के व्रत वाली हो, पत्नी वह है जिसे पति प्राणों से भी प्यारा हो, पत्नी वह है जो सन्तान वाली हो।

लालनीया सदा भार्य्या ताडनीया तथैव च।
लालिता ताडिता चैव स्त्री श्रीर्भवति नान्यथा ॥१५॥

पत्नी सदा लालन तथा ताड़न के योग्य है। लालन और ताड़न से ही स्त्री लक्ष्मी बनती है, अन्यथा नहीं।

इति शाङ्खीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमहायज्ञाः गृहाश्रमिणां प्रशंसातिथिवर्णनञ्च।

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च तस्य पापस्य शान्तये ॥१॥
पञ्चयज्ञविधानञ्च गृही नित्यं न हापयेत्।
पञ्चयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥२॥

गृहस्थ के घर में पांच वध्यस्थल हैं—चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखल और जल का घड़ा। उनसे उत्पन्न होने वाले पाप से बचने के लिये गृहस्थ कभी

पञ्चमहायज्ञों के विधान का त्याग न करे। उसका वह पाप पांच यज्ञों के अनुष्ठान से नष्ट हो जाता है।

देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च।
ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥३॥

देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ और नृयज्ञ—ये पांच यज्ञ कहे गए हैं।

होमो दैवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिण्डक्रिया स्मृतः।
स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥४॥

होम को देवयज्ञ कहते हैं, (भूतों को) बलि देने को भूतयज्ञ कहते हैं; (पितरों को) पिण्ड देने को पितृयज्ञ कहते हैं, अपने वेद के अध्ययन को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं, और अतिथिपूजा को नृयज्ञ कहा जाता है।

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः।
गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥५॥

वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा ब्राह्मण—ये सब के सब यथाविधि गृहस्थ की कृपा से जीवित रहते हैं।

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।
दाता चैव गृहस्थः स्यात्तस्माच्छ्रेष्ठो गृहाश्रमी ॥६॥

गृहस्थ ही यज्ञ करता है, गृहस्थ ही तप तपता है, गृहस्थ ही दान देता है, इस लिये गृहस्थ आश्रम में वास करने वाला उत्तम है।

यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा।
अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥७॥

जिस प्रकार पति स्त्रियों का स्वामी है और ब्राह्मण वर्णों का स्वामी है, उसी प्रकार अतिथि इस गृहस्थ का स्वामी माना गया है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥८॥

नारी न तो व्रतों से, न उपवासों से और न ही विविध प्रकार के धर्माचरण से स्वर्ग को प्राप्त करती है। वह तो पति की पूजा से ही स्वर्ग को प्राप्त करती है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथग्विधैः।
राजा स्वर्गमाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥९॥

राजा न तो व्रतों से, न उपवासों से और न ही विविध प्रकार के यज्ञों से